International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(1): 35-38

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(1): 35-38
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 12-11-2016
Accepted: 13-12-2016

डॉ0 अनुभा जैन
गुरु नानक गर्ल्ज़ कॉलेज
यमुनानगर (हरियाणा), भारत।

Correspondence
डॉ0 अनुभा जैन
गुरु नानक गर्ल्ज़ कॉलेज
यमुनानगर (हरियाणा), भारत।

जैन पुराणों के अनुसार जैन ब्राह्मण : एक चिन्तन

डॉ0 अनुभा जैन

प्रस्तावना

आप्टे के अनुसार 'ब्राह्मण' पद का निर्वचन इस प्रकार है– ब्रह्म वेद शुद्ध चैतन्यं वा वेत्यधीते वा जन्मना जायते शूद्रः संस्कारैर्द्विज उच्यते।[1] अनेक स्थलों पर ब्राह्मण को पुरोहित, ब्रह्मज्ञानी एवं धर्मशास्त्री भी कहा गया है।

साहित्य युग का प्रतिबिम्ब है। भारतीय परम्परा में चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का वर्णन मिलता है।[2] 'मनुस्मृति' में गर्भ से लेकर मरणपर्यन्त जिन–जिन गर्भाधानादि क्रियाओं का वर्णन मिलता है अधिकांशतः जैन पुराणों में उन्हीं क्रियाओं का जैन पद्धति से संस्करण हुआ है। जैन पुराणों में भी इन्हीं चारों वर्णों का उल्लेख मिलता है।[3] परन्तु इस शोध पत्र में जैन पुराणों के आधार पर जैन ब्राह्मणत्व एवं जैन ब्राह्मणों का उल्लेख किया गया है।

जैनग्रन्थों का सूक्ष्म विवेचन करने ज्ञात होता है कि जैन सम्प्रदाय के मत में ब्राह्मणत्व का आधार व्रतसंस्कार एवं शील माना गया है। [4] जैन परम्परा के अनुसार जिस व्यक्ति ने भी अंहिसा आदि व्रतों को धारण कर लिया वही ब्राह्मण हो जाता है क्योंकि जैन मतानुसार व्रतसंस्कार द्वारा कोई भी मनुष्य ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है। जैन ग्रन्थों में तो इन द्विजों को वर्णोत्तम माना गया है। [5] परन्तु उसे श्रावक की प्रतिमाओं के अनुसार व्रतचिन्ह के रूप में उतने यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है, क्योंकि संस्कारित यज्ञोपवीत को धारण करने पर ही वह द्विज कहलाता है।[6] स्पष्टतः ब्राह्मणवर्ण की रचना का आधार मात्र व्रतसंस्कार था।

जैनाचार्य अभिगत के मत में भी जो सत्य, शौच, तप, शील, ध्यान, संयम से रहित है ऐसे प्राणियों को किसी उच्चजाति में जन्म लेने मात्र से धर्म नहीं प्राप्त हो जाता [7] क्योंकि बिना व्रतों को धारण किए मात्र जाति के आधार पर ब्राह्मणत्व नहीं मिलता। [8] आदिपुराण भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि तप, शास्त्रज्ञान और जाति–ये तीन ब्राह्मण होने के कारण हैं परन्तु जो मनुष्य तप और शास्त्रज्ञान से रहित हैं वे केवल जाति से ही ब्राह्मण हैं परन्तु फिर भी उनमें ब्राह्मणत्व नहीं है। [9] जो व्रतों को धारण करते थे और जीवरक्षा की भावना से युक्ते थे उन्हें भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मणवर्ण में सम्मिलित किया। [10] उन्होने 6 क्रियाओं को ब्राह्मण वर्ण का कुलधर्म बताया । वे है– इज्या (जिनेन्द्र देव की पूजा), वार्त्ता (कृषि करना), दत्ति (दान देना), स्वाध्याय (शास्त्रों का अध्ययन करना), संयम (व्रत धारण करना) और तप (उपवास करना)। [11]

जैन धर्म मात्र एक धर्म नहीं अपितु मानव–मस्तिष्क की एक वास्तविकता है। यह सिद्धान्तों की परिपेटी है जो जीवन के तरीकों का नेतृत्व करना है और मनुष्य को बन्धनों से मुक्ति प्रदान करता है, क्योंकि जैन मतानुसार पृथ्वी पर रह कर भी जो अहिंसादि दोषों से मुक्त होता है, वही ब्राह्मण है। [12] उचित भी है क्योंकि दान, पूजा, अध्ययन आदि कार्यों को प्रधान रूप से करने से व्रतों की शुद्धि हो जाती है जिससे वह मनुष्य और भी अधिक सुसंस्कृत हो जाता है।[13]

सम्भवतः जैन धर्म की इसी महत्ता को समझते हुए जैन–दीक्षा को धारण करने वाले जैन ब्राह्मणों का अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। हरिवंशपुराण में भी वर्धकि नामक ग्राम में रहने वाले मृगायण नाम के ब्राह्मण का वर्णन मिलता है जिसकी पत्नी मधुरा नाम की ब्राह्मणी है। वह ब्राह्मण गौतम स्वामी से अपने पूर्व भव का ज्ञान प्राप्त करके दान, पूजा, तप, शील एवं सम्यक्त्व का सम्यक् पालन कर सहस्रार स्वर्ग का देव हुआ और उसकी पत्नी ब्राह्मणी सम्यक्दर्शन के प्रभाव से स्त्री पर्याय को छोड़ कर उसी स्वर्ग में सूर्यप्रभ नाम का देव हुई।[14]

आदिपुराण में भी इस तथ्य की पुष्टि मिलती है कि इन उपर्युक्त धर्मसम्बन्धी आचरणों से ब्राह्मण स्व में प्रशंसनीय देवब्राह्मणत्व की सम्भावना करता है।[15] बाल्यावस्था में ही श्रावकाचार के शास्त्रों का अभ्यास करने से जिसे अच्छे संस्कार प्राप्त हो जाते हैं वह निज और पर को तारने वाला हो जाता है।[16] यथार्थतः यह जैन धर्म का ही माहात्म्य है जो संस्कारों को धारण करके वह ब्राह्मण किसी से भी

तिरस्कृत नहीं होता[17] एवं अपने गुणों की अधिकता के कारण वह अवध्य हो जाता है।[18]

पद्मपुराण का गहन अध्यन करने पर भी ज्ञात होता है कि जैनदीक्षित ब्राह्मणों ने जैन धर्म की महत्ता ही स्वीकार नहीं की अपितु उसका पालन भी किया। उन्होनें मुनिराज के द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म को अंगीकृत करके अनुयोगों का स्वरूप सुना।[19] जैन मतानुसार जो जिनेन्द्र भगवान् का उपदेश सुनकर उनकी शिष्य–परम्परा में प्रविष्ट हुए, वे ब्राह्मण हैं।[20] अतः भरत क्षेत्राधिपति ने उत्तम द्विजों को अच्छी शिक्षा दे कर ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की।[21] जैन ग्रन्थों में तो यहाँ तक भी कह दिया गया है कि विशुद्ध वृत्ति को धारण करने वाले जैन लोग ही सब वर्णो में उत्तम हैं। उन्हें ही द्विज कहा गया है। इनको इतनी उत्तम श्रेणी में रखा गया हैं कि ये ब्राह्मण आदि वर्णों के अन्तर्गत न हो कर वर्णोत्तम हैं और जगत्पूज्य हैं।[22]

एक स्थान पर स्पष्ट अंकित है कि दुःखों को नष्ट करने वाले जैन शासन को ब्राह्मणों ने प्राप्त किया[23] जिसे पद्मपुराण में अरहन्त का धर्म कहा गया है।[24] उसी धर्म को सुन कर सुशर्मा ब्राह्मणी ने जिन धर्म प्राप्त किया[25] एवं अनुव्रत ग्रहण किए।[26] तब वे ब्राह्मण सर्वपरिग्रह से विरक्त हो कर उत्तम मुनि हो गए।[27]

कर्नाटक देश के कोले नामक ग्राम के माधवभट्ट नामक ब्राह्मण और देवी ब्राह्मण से पूज्यपाद का जन्म हुआ। साँप के मुँह में फँसे हुए मेंढक को देख कर ब्राह्मण पूज्यपाद को वैराग्य हो गया और वे जैन साधु बन गए।[28] श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं0 40 (64) के अनुसार ब्राह्मण पूज्यपाद का प्रथम नाम देवनन्दी रहा है। अपनी महती बुद्धि के कारण वे जिनेन्द्र देव नाम से भी प्रसिद्ध हुए।[29] पूज्यपाद द्वारा विरचित ग्रन्थों के परिशीलन से स्पष्ट है कि वे विख्यात वैयाकरण और सिद्धान्त के पारंगत रहे है।

आचार्य पूज्यपाद पाणिनि व्याकरण, उसके वार्तिक और महाभाष्य के मर्मज्ञ थे। श्रवणबेलगोल के एक शिलालेख के आधार से यह कहा जा सकता है कि जिस जल से उनके चरण प्रक्षालित किए जाते थे उसके स्पर्श से लोह भी स्वर्ण बन जाता था। उनकी अन्तिम मौलिक कृति 'जैनेन्द्र व्याकरण' है जिसमें 3000 सूत्र हैं।[30] इनके द्वारा रचित 'समाधितन्त्र' में 1052 श्लोक एवं 'इष्टोपदेश' में 51 श्लोक हैं जो जैन साहित्य को अनुपम देन है। भट्ट अकलंक देव द्वारा विरचित उपलब्ध साहित्य में सिद्धि विनिश्चय एवं तत्त्वार्थ वार्तिक सम्मिलित है।[31]

हरिवशंपुराण में एक अन्य स्थल पर एक अन्य ब्राह्मण एवं उसके समस्त परिवार के द्वारा दीक्षा धारण करने का वृतान्त मिलता है।[32] एक अन्य स्थल पर वसुदेव नाम का ब्राह्मण भगवान वृषभदेव के द्वारा दर्शाए गए आर्य वेदों का अध्ययन करके सम्पूर्ण ब्राह्मणों के समूह सहित धर्म–यज्ञ करता था।[33] गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण जब इन्द्र के साथ समवसरण में प्रविष्ट हुआ तब वहाँ मानस्तम्भ देखते ही उसका सारा अभिमान नष्ट हो गया। परिणामस्वरूप उसकी आत्मशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती गई जिससे असंख्यात भवों में उपार्जित उसका दुस्तर कर्म नष्ट हो गया। उसने तीन प्रदक्षिणा करके जिनेन्द्र की वन्दना की और संयम को ग्रहण कर लिया। तब उनके विशुद्धि के बल से अन्तर्मुहुर्त में ही उसमें गणधर के समस्त लक्षण प्रकट हो गए जिससे उन्होंने जिन भगवान् के मुख से निकले हुए बीजपदों के रहस्य को ज्ञान लिया। इस प्रकार श्रावणमास के कृष्णपक्ष में युग के आदिभूत प्रतिपदा के दिन उन्होंने आचारादि 12 अंगो और सामायिक चतुर्विंशति आदि 14 प्रकीर्णकों रूप अंगबाह्यों की रचना की। इस भाँति इन्द्रभूति भट्टारक वर्धमान जिन के तीर्थ में ग्रन्थकर्ता हुए।[34]

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि जैन सम्प्रदाय की सभ्यता, संस्कृति एवं जिनशासन का अध्ययन करने से पूर्व उन तथ्यों का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है जिनके सूक्ष्म सर्वेक्षण से हमें जैन धर्म के अतीत का ज्ञान होता है। क्योंकि यास्क मुनि भी 'ब्राह्मण' पद की निरूक्ति –' ब्रह्मजानाति ब्राह्मण' यह कह कर करते हैं कि ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को ही मोक्ष का आधार मानता हो क्योंकि बह्म और ब्रह्मांड को जानना आवश्यक है तभी ब्रह्मलीन होने का मार्ग प्रशस्त होता है। जैन आगमों में श्रमण–परम्परा का उल्लेख मिलता है अर्थात् जो श्रम द्वारा मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण करता है वह श्रमण है। भरत चक्रवर्ती ने तप और श्रुत को ही ब्राह्मण जाति का मुख्य संस्कार कहा है क्योंकि गर्भ से उत्पन्न होने वाली उनकी सन्तान नाम से ब्राह्मण भले ही हो जाए पर जब तक उसमें तप और श्रुत नहीं होगा तब तक वह सच्चा ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।

श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित समयसार में श्री अमृतचन्द सुरि का उल्लेख ठक्कुर पद के साथ किया गया है।[35] ठक्कुर पद क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों के लिए समान रूप से प्रयुक्त होता है।[36] एक अन्य जैन ग्रन्थ में भट्टारक को ब्राह्मण ही कहा गया है।[37]

जैन सम्प्रदाय के ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि 'माहण' पर ब्राह्मण अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसका प्रमाण पद्मपुराण में प्राप्त होता है जिससें यह अनुमानित होता है कि 'माहण' पद प्राकृत का है और उसी की एक व्युत्पत्ति प्राकृत उक्ति 'मा हणं' अर्थात् मत मारो से सार्थक बैठती है। प्राकृत पउमचरिउ में ऐसा प्रमाण मिलता है। यद्यपि संस्कृत में माहण शब्द को कहीं स्वीकार नहीं किया गया और न ही रविषेणाचार्य के सम्प्रदाय में इस शब्द का कोई प्रयोग मिलता है परन्तु इसके विपरीत प्राकृत जैन आगम ग्रन्थों में इस शब्द का बहुत अधिक बार प्रयुक्त हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि रविषेणाचार्य ने इसे पउमचरिउ के आधार से जैसा का तैसा संस्कृत में रख दिया है।

जैन सम्प्रदाय के प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव ने जिन लोगों की 'मा हननं कार्षीः' – हनन मत करो यह कह कर रक्षा की थी वे ही आगे चल कर 'माहण या माहन' इस प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। एक ग्रन्थ में ऐसा उल्लेख मिलता है कि कण्ठ सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत को धारण करने वाले जिन ब्राह्मणों की चक्रवर्ती भरत ने पहले बीज के समान थोड़ी ही रचना की थी वे ही अब सन्तति रूप से बढ़ते हुए समस्त पृथ्वी तल पर फैल गए।

प्रतीत होता है कि भोगभूमिज मनुष्य प्रकृति से भद्र और शान्त होते थे। ब्राह्मण वर्ण की जो प्रकृति है वह उस समय मनुष्यों में स्वभाव से ही थी। संयम, नियम, शील, तप, दान, दम और दया की विद्यमानता के कारण सब श्रेष्ठ जाति के ही होते थे।[39] महाभारत में भी जो यह उल्लेख मिलता है कि सबसे पहले ब्रह्मा ने ब्राह्मण वर्ण स्थापित किया उसका भी यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि मनुष्य मूलतः ब्राह्मण प्रकृति के थे।[40]

भरतक्षेत्र के अधिपति महाराज भरत ने उत्तम व्रत धारण करने वाले उत्तम द्विजों को उत्तम शिक्षा दे कर ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की[41] एवं शास्त्रार्थों को जानने वाले और श्री वृषभ जिनेन्द्र के मतानुसार धारण की हुई दीक्षा से पूजित होने वाले ब्राह्मण संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए।[42]

सन्दर्भ सूची

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, पृ0 724
2. ऋग्वेद, 10.90.12 : ब्राह्मणोऽस्य मुखमासी द्वाहू राजन्यः कृतः।
   ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।
3. आदिपुराण, 38.46 : ब्राह्मण व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात्।
   वणिजोऽर्थार्जनान्न्याय्यात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात्।।
4. आदिपुराण, 39.93 : जातो भवेद् द्विजन्मेति व्रतैः शीलैश्च भूषितः।

5. हरिवंशपुराण 29.131 : वर्णान्तः पातिनो नैते मन्तव्या द्विजसत्तमाः।
व्रतमन्त्रादिसंस्कारसमारोपितगौरवाः।।

6 आदिपुराण, 40.158 : सूत्रं गणधरैदृब्धं व्रतचिन्हं नियोजयेत्।
मन्त्रपूतमतो यज्ञोपवीती स्यादसौ द्विजः।।

7 धर्मपरीक्षा, परि 17 : न जातिमात्रो धर्मो लभ्यते देहधारिभिः।
सत्यशौचतपः शीलध्यानस्वाध्यायवजितैः।।

8 वही : आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम्।
न जातिर्ब्राह्मणाद्यास्ति नियताकापि तात्त्विकी।।

9 आदिपुराण, 38.43 : तपः श्रुतांच जातिश्च त्रयं ब्राह्मण्यकारणम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एवं सः।।

10 द्र0 –आदिपुराण, प्रस्ताविक, पृ0 4
द्र0 – आदिपुराण 38.13–19

11 आदिपुराण, 38.24 : इज्यां वार्तां च दत्तिं च स्वाध्यायं संयमं तपः।
श्रुतोपासकसूत्रत्वात् स तेभ्यः समुपादिशत्।।

12 आदिपुराण 39.104 : स्पृशन्नपि महीं नैव स्पृष्टो दोषैर्महीगतैः।

13 आदिपुराण, 38.44 : अपापोपहतां वृत्तिः स्यादेषां जातिरुत्तमा।
दत्तीज्याधीति मुख्यत्वाद् व्रतशुद्धया सुसंस्कृता।।

14 हरिवंशपुराण,17.84 : ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्या शूद्राः साश्रमिणोऽविशन्।
लौकिकाः सहजं प्रष्टुमविशेषादृते सभाम्।।

15 आदिपुराण, 39.107 : धर्म्यैराचरितैः सत्यशोचक्षान्तिदमादिभिः।
देवब्राह्मणतां श्लाध्यां स्वास्मिन् संभावयत्यसौ।।

16 आदिपुराण, 40.180 : बाल्य एवं ततोऽभ्यस्येद द्वि जन्मौपासिकीं श्रुतिम्।
स तथा प्राप्तसंस्कारः स्वपरोत्तारको भवेत्।।

17 आदिपुराण, 40.196 : धर्मस्य तद्धि माहात्म्यं तत्सथो यन्नाभिभूयते।

18 आदिपुराण,40 194:

19 पद्मपुराण, 35.84 : ततस्तेन समुट्टिष्टं धर्मं सद्मनिवासिनाम्।
स जग्राहानुयोगांश्च शुश्राव चतुरः सुधीः।।

20 आदिपुराण, 39.127 : ब्राह्मणोऽपत्त्यमित्येवं ब्राह्मणाः समुदाहृताः।

21 द्र0 आदिपुराण 38.39.40

22 द्र0 आदिपुराण, 39.142 : विशुद्धवृत्तयस्तस्याज्जनौ वर्णोत्तमा द्विजाः।
वर्णान्तापातिनो नैते जगन्मान्या इति स्थितम्।।

23 आदिपुराण, 35.87–89 : तृषार्तेनेव सत्तोयं छायेवाश्रयकाङ्क्षिणा।
क्षुधार्तेनेव मिष्टान्नं रोगिणेव सुभेषजम्।।
दुष्पथप्रतिपन्नेन वर्त्मेवेप्सितदेशगम्।
यानपात्रमिवाम्भोधौ व्याकुलेन निमज्जता।।
मयेदं शासनं जैनं सर्वदुःख विनाशनम्।
लब्धं भवत्प्रसादेन दुर्लभं पुरुषाधमैः।।

24 आदिपुराण 35.102 : अर्हद्धर्मो

25 आदिपुराण 35.104 : ब्राह्मणी विनिशम्यैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत्।
मयापि त्वत्प्रसादेन लब्धो धर्मो जिनोदितः।

26 आदिपुराण 35.117 : पदमूले ततो नीत्वा गुरोस्तस्यैव सादरम्।
अणुव्रतानि सामोदा ब्राह्मणी तेन लम्भिता।।

27 आदिपुराण 35.123 : इति केचित् समाधाय मनः संवेगनिर्भराः।
विरक्ताः सर्वसंगेभ्यो बभूवुः श्रमणोत्तमाः।।

28 सर्वार्थसिद्धि, प्रस्तावना, पृ0 80
षट्खण्डागम, पृ0 681द्र0:

29 अनगार धर्मामृत टीका, पृ0 588
ऐतच्च विस्तरेण ठक्कुरामृतचन्द्रं सूरि विरचित
समयसार टीकायां दृष्टव्यम्।

30 द्र0– सर्वार्थसिद्धि, पृ0 81

31 द्र0– सर्वार्थसिद्धि, पृ0 40

32 हरिवंशपुराण 21.131 वाराणस्यां पुराणार्थवेदव्याकरणार्थवित्।
ब्राह्मणः सोमशर्मासोत्सोमिला तस्य माहनी।
तयोर्दुहितरौ भद्रा सुलसा च सुयौवने।
वेदव्याकरणादीनां शास्त्राणां पारगे परे।।.
कुमार्यावेव वैराग्यात् परिव्राजकतां श्रिते।
सुप्रसिद्धिं गते भूमौ जित्वा वादेषु वादिनः।।

द्र0– हरिवंशपुराण, 23.29, पृ0 333–34.

33 हरिवंशपुराण 23.44 : तानधीत्य तदुक्तेन विधिना भरतार्चितः।
धर्मयज्ञानयष्टाद्ययुगे विप्रगणोऽखिलः।।.

34 धवला पु0 पृ0 9 पृ0 129–30

35 समयसार (पूर्वार्द्ध) –पृ0 25–26

36 अनगार धर्मामृत टीका, पृ0 588 ऐतच्च विस्तरेण ठक्कुरामृतचन्द्रं सूरि विरचित समयसार टीकायां दृष्टव्यम्।

37 द्र0– संयम प्रकाश (उत्तरार्द्ध), द्वितीय भाग, पृ0 447.

38 द्र0– जैन साहित्य और इतिहास, द्वि0 संस्करण, पृ0 2

39 धर्मपरीक्षा, परि0 17 : संयमोनियतः शीलं तपो दानं दमो दया।
विद्यन्ते तात्त्विकी यस्यां सा जातिर्महती सताम्।

40 महाभारत, अध्याय 188 : असृजद् ब्राह्मणानेव पूर्व ब्रहमा प्रजापतीन।
आत्मतेजेभिनिर्वृत्तान् भास्कराग्नि सप्रभान्।

41 आदिपुराण, 40.221 : इत्थं स धर्मविजयी भारताधिराजो।
धर्मक्रियासु कृतधीनृपलोकसाक्षि।
तान् सुव्रतान् द्विजवरान् विनियम्य सम्यक्।
धर्मप्रियः समसृजत् द्विजलोक सर्वम् ।।

42 आदिपुराण 40.222 : इति भरतनरेन्द्रात् प्राप्तसत्कारयोगा।
व्रत परिचयचारूदारवृताः श्रुताढ्याः।
जिनवृषभमतानुव्रज्यया पूज्यमानाः।
जगति बहुमतास्ते ब्राह्मणाः ख्यातिमीथुः।।